International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(1): 220-226

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(1): 220-226
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-12-2022
Accepted: 15-01-2023

मलयज गंगवार
शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, भारत

डॉ. मीनाक्षी गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
मलयज गंगवार
शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, भारत

राजस्थानी–साहित्य में श्रृंगार की 'देहधार्य' परम्परा के अन्तर्गत आभूषण

मलयज गंगवार, डॉ. मीनाक्षी गुप्ता

सारांश
राजस्थानी–साहित्य में तलवार की टंकार और पायल की झंकार दोनों को समुचित स्थान मिला है। साहित्य में स्त्रियों की श्रृंगार–परम्परा के चतुर्विध प्रकारों– 'कचधार्य' (केश–सज्जा), 'देहधार्य' (देह का श्रृंगार), 'परिधेय' (वस्त्रों से देहावरण करना) तथा 'विलेपन' (सौन्दर्य व स्वास्थ्य के लिए विभिन्न वस्तुओं से देह–आलेपन करना) का उल्लेख मिलता है। श्रृंगार–परम्परा के ये चतुर्विध प्रकार वर्तमान काल में भी स्त्रियों के लिए ही नहीं, अपितु पुरुषों के लिए भी प्रासंगिक हैं। श्रृंगार–परम्परा की 'देहधार्य' कला के अंतर्गत विविध प्रकार के आभूषणों से देह का श्रृंगार करना राजस्थानी संस्कृति में अत्यंत व्यापक व महत्वपूर्ण रहा है, जिसका राजस्थानी साहित्य में प्रचुरता से उल्लेख हुआ है। प्रस्तुत शोधपत्र में राजस्थानी एवं राजस्थान से सम्बंधित साहित्य में वर्णित विविध प्रकार के आभूषणों को स्त्री व पुरुषों द्वारा दैहिक अंगों पर धारण किये जाने के अनुसार वर्गीकृत व विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

कूटशब्दः राजस्थानी–साहित्य, श्रृंगार, परम्परा, देहधार्य, आभूषण

प्रस्तावना
सौन्दर्य–बोध मानवीय वृत्तियों में सबसे सहज है। अनादिकाल से ही मानव इसका प्रयोग स्वयं एवं परिवेश को प्रभावित करने के लिये करता रहा है और यह प्रवाह निरंतर तथा अविरल है। सौन्दर्य के प्रति इस अनुराग के कारण श्रृंगार का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया। सौन्दर्य के प्रति समाज में प्रसारित इस अनुरक्ति के कारण हमारा राजस्थानी साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। प्राचीन काल से राजस्थानी समाज में प्रचलित रहीं श्रृंगारिक व सांस्कृतिक परम्पराओं को उजागर करने में राजस्थानी तथा राजस्थान से सम्बन्धित विभिन्न साहित्यिक व इतिहास आधारित कृतियों का विशेष योगदान रहा है। वस्तुतः रचनाकार अपने समाज से प्रभावित रहता है, उसकी कल्पना वर्तमान की नींव पर अतीत तथा भविष्य के प्रासादों का निर्माण करती है। इन रचनाओं से रचनाकार के वर्तमान के साथ–साथ रचना में वर्णित काल के सरोकारों का ज्ञान होता है।

देह–श्रृंगार की प्रवृत्ति मानव की एक नैसर्गिक प्रवृत्ति है। मानव–मात्र के मन में साज-सज्जा व अलंकरणों के प्रति स्वाभाविक आकर्षण के कारण श्रृंगारिक परम्परा की 'देहधार्य' कला के अन्तर्गत स्त्री एवं पुरुषों द्वारा मानव सभ्यता के उद्भव काल में पुष्प–पत्ती, पंख, शंख, कौड़ी, हड्डियों, सींगों, रंग–बिरंगे पाषाण–खण्डों आदि को अनगढ़ आभूषणों के रूप में स्व–देह को अलंकृत करने के लिए प्रयुक्त किया गया। कालांतर में स्वयं के मानसिक व सामाजिक विकास–क्रम में मानव–मन में देह का श्रृंगार करने की कला विकसित एवं परिष्कृत होती गयी, जिससे वह विभिन्न धातुओं, रत्नों, मोती आदि के आभूषणों से स्व–श्रृंगार करने लगा।

राजस्थानी समाज में आभूषण अत्यधिक लोकप्रिय रहे हैं। स्त्री–पुरुषों द्वारा आभूषणों के प्रति इस आकर्षण में 'सौन्दर्य–वृद्धि' के साथ–साथ समाज में अपने यश, प्रतिष्ठा व वैभव–प्रदर्शन तथा आर्थिक सुरक्षा की भावना रही है। एक राजस्थानी कहावत के अनुसार संकट के समय आभूषण गरीब लोगों के लिये भोजन जुटाने में सहायक तथा समृद्ध लोगों के लिये श्रृंगार के प्रसाधन हैं– ''गेणी भूखां रौ भोजन अर धायां रौ सिणगार''। घुमन्तू बंजारा समुदाय के एक लोकगीत के प्रस्तुत अंश में एक बंजारन अपने गृहस्थ स्त्री–धर्म को निभाते हुये अपने बंजारे को व्यापार हेतु सामान खरीदने के लिये अपने 'नवसर हार' को गिरवी रखने को कह रही है– ''बणजारा ओ नायक ओ हेड़ाऊ मलौ–मेलौ नवसर हार''। स्त्रियों को आभूषण भी परिवारी–जनों के समान अत्यंत प्रिय होते हैं। राजस्थानी लोकगीतों में सगे–सम्बन्धियों की तुलना आभूषणों से की गयी है –

''म्हारा सुसराजी सोनो सोळमो, म्हारा सासूजी अरथ भंडार
जेठसा बाजूबंद सरीखा, भाभीसा हो बाजूबन्द री लूंब।''

राजस्थान में स्त्रियों के षोडस शृंगारों की परम्परा भी अत्यन्त प्राचीन है। षोडस शृंगारों को धारण किये हुई स्त्रियों के अनुपम सौन्दर्य का उल्लेख रीतिकालीन साहित्य के साथ–साथ राजस्थानी लोकगीतों तथा 'सूरज प्रकास' जैसे शुद्ध ऐतिहासिक काव्य–ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है– ''सझि वांम सोल सिंगार, भलकंत वीज सिलार।''[1] –अर्थात् सोलह शृंगारों से सज्जित स्त्री बिजली की चमक की तरह चमकती है।

राजस्थानी साहित्य में स्त्रियों के लिए नियत षोडस शृंगारों के साथ–साथ 'बत्तीस आभरणों या आभूषणों' का भी उल्लेख प्राप्त होता है– ''सोलह सझि सिण्गार, सोलह वीस आभरण सुंदरि।''[2] –अर्थात् सुन्दरी षोडस शृंगारों एवं बत्तीस आभरणों से सज्जित हुई। विभिन्न सौंदर्य–प्रेमी साहित्यकारों द्वारा अपनी–अपनी रुचि के अनुसार विविध प्रकार के बत्तीस आभूषणों को परिगणित किया गया है। कवि चन्द द्वारा रचित 'आभूषण–बत्तीसी'[3] में वर्णित किये गये बत्तीस आभूषण अधोवत् हैं–

1. हाथ सांकलो, 2. अकोटा, 3. सहेलड़ी, 4. हथ आरसी, 5. पगपान, 6. हाथ वाडलौ, 7. नखला, 8. पंचलड़ी, 9. नकबेसर, 10. कांबी, 11. गजरा, 12. चंपकली, 13. नवसर हार, 14. जेहड़, 15. निलाड़ टीको, 16. बाजूबंध, 17. सीसफूल, 18. रमझोल, 19. चूड़ी, 20. घूघरा, 21. मुद्रिका, 22. चीढ़, 23. चंदण्हार, 24. मोतीसिरी, 25. पग पाउटा, 26. गूजरी, 27. करणफूल, 28. मादलिया, 29. जव, 30. माला, 31. हाथपान, 32. पाउटा।

महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, फोर्ट, जोधपुर में स्थित 'जवाहरखाना की एक बही'[4] में स्त्रियों के कुछ आभूषणों के नाम– लोड़ा, कड़ला, बेडिया, दावणियां, डोरा, पोलरियां, अगूठियाँ, साटां, कड़ा, चौकियां, चूड़ा री पतियां, कातरिया, गूजरिया, मादलिया, टोटिया, दाँत के बीलियों की तीवें, बिछुड़ियाँ, करणफूल, जवलिया, पगपाना, चूड़ियाँ, बाजूबन्द, गोखरू, जूटाणियाँ, दूसियाँ, पायल, छापा, बींठियाँ, रसबिया, कांठला, मुरकिया, फूल, उपिया, जांजरिया, नोगरियां, बोर, रेखलिया, छड़ा, तिमणिया आदि मिलते हैं।

'ढोला मारू रा दूहा'[5] में कवि ने सोना–चाँदी निर्मित, मोती व रत्नजड़ित आभूषणों– सिरी, ग्रीवा में हार, मुक्ताहार, मोतीहार, भ्रूवों में सोहली, कानों में कुण्डल व मोती, नासिका में नकफूली व अधरों को ढँकने वाला आभूषण– संभवतः नथ, बाहों में बहरखा, चूड़ा व चूड़ी, कटि–प्रदेश पर मेखला, पाँवों में पायल, झांझर व घुंघरू के साथ–साथ कुछ पुष्पाभरणों का भी उल्लेख किया है।

''बाँहे सुंदरि बहरखा, चासू चुड़ स वचार। मनुहरि कटि थळ मेखळा, पग झांझर झणकार।।''[6]

'सुजान चरित्र'[7] में चुटीला, सीसफूल, बेसर, नथ, बुलाक, कर्नफूल, खुटिला, खुंभी, चंपकली, मुक्तामाला, मणिमाला, रसना, छुद्रघटिका, बाजूबंद, टाड, पहेली, चूड़ी, कंकन, गजरी, पहुँची, खेड़ा, कटक, छल्ला, अँगूठी, आरसी, पाइल, पगपान, नुपुर, अनौट, झाँझन आदि स्त्री–आभूषणों तथा कलगी, तुर्रा, कौर, सिरपेच, गोखरू आदि पुरुष–आभूषणों का उल्लेख हुआ है।

'पृथ्वीराजरासो' में भी विभिन्न प्रकार के आभूषणों का उल्लेख है। इसमें कवि ने नायिका इच्छिनी के चलने पर उसके आभूषणों से उत्पन्न मनोहारी स्वर को झींगुर की कौतुक जगाने वाली आवाज से उपमा दी है–

''जेहरि नुपुर नद्द। सद्द घुघर कोतूहल।। बिछिय निसद्द निसाल। सद्द झिंगुर कल कूहल।।''[8]

राजस्थानी समाज में प्रचलित देहधार्य परम्परा के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की धातुओं, पुष्पों तथा देशज वस्तुओं से निर्मित आभूषणों के बारे में विभिन्न प्राचीन साहित्यिक व ऐतिहासिक कृतियों– माघ कृत 'शिशुपालवध', रोडा कृत 'राउलवेल', कल्लोल कृत 'ढोला मारू रा दूहा', विरहणी नायिका की विरह–वेदना से भरे काव्य–संदेशों के अब्दुल रहमान कृत 'संदेशरासक', पृथ्वीराज चौहान के जीवन एवं उनके द्वारा लड़े गए युद्धों की चंद बरदाई कृत काव्य–गाथा 'पृथ्वीराजरासो', जोधराज कृत 'हम्मीररासो', चित्तौड़ की रानी पदमावती के सौंदर्य और उसको लेकर हुए युद्ध पर आधारित मलिक मोहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत', नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेवरास', पद्मनाभ कृत 'कान्हड़दे प्रबन्ध', अबुल फजल कृत 'आइने अकबरी', मीरांबाई के कृष्ण–भक्ति के पद–संग्रह 'मीरां बृहत्पदावली', पृथ्वीराज राठौड कृत 'क्रिसन–रुक्मणी–री वेलि', कविवर बिहारीलाल के दोहों के संग्रह 'सतसई' की टीका 'बिहारी–रत्नाकर', मान कृत 'राजविलास', वृन्द कृत 'वृन्द–ग्रन्थावली', करणीदान कृत 'सूरजप्रकास', सूदन कृत 'सुजान–चरित्र', बाँकीदास आसिया कृत 'बाँकीदास ग्रन्थावली' आदि से तथा राजस्थान की संस्कृति पर प्रकाश डालने वाली आधुनिक काल के लेखकों की पुस्तकों– सुखवीर सिंह गहलोत की 'राजस्थान के रीति रिवाज', के. एस. गुप्ता व जे. के. ओझा की 'राजस्थान का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास', गोपीनाथ शर्मा की 'राजस्थान थ्रू द एज़ेज' तथा 'सोशल लाइफ इन मिडीवल राजस्थान', राधेश्याम की 'सल्तनतकालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास', नीलम शेखावत की 'राजस्थान में आभूषण कला एवं संस्कृति', लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत की 'राजस्थान के सांस्कृतिक लोकगीत', विक्रमसिंह राठौड़ की 'राजस्थान की संस्कृति में नारी' आदि के अध्ययन से राजस्थान में प्रचलित रहे विविध प्रकार के आभूषणों का ज्ञान होता है। राजस्थानी समाज में प्रचलित रहे इन आभूषणों को दैहिक अंगों पर धारण किये जाने के अनुसार अधोलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

स्त्री–आभूषण

शिरोभूषणः रखड़ी, बोर, मांग टीकौ, भंवर तिलक, मांगपट्टी, मांग, मांगफूल, फीणी, सरी, सांकली, स्वर्ण–पत्रिका, फूलग्धर, शीशफूल, टिड्डी–भला, चन्द्रमणि, दांमणी, चांद–सूरज, झेला, अर अथवा अड़, मेमन्द अथवा मैमद, पात, मोडौ, मोर–पट्टा, मोर मींडली, टिकड़ा, चांद, मिरजा बारपखा, कोट बिलादर, फतहपेज, सेली, धुंडी, बालचोटी आदि स्त्रियों के शिरोभूषण रहे हैं। इनमें से राखड़ी, बोरला व मांगटीकौ स्त्री के सधवा होने के सूचक हैं। इन शिरोभूषणों के अतिरिक्त स्त्रियों में सेलड़ौ, चोटीबंध व चुटीला आदि से अपनी वेणी तथा बहुमूल्य रत्नों व सोने–चाँदी के घुंघरुओं से जूड़े को सुशोभित करने की परम्परा रही है। स्त्रियाँ सारा–सरी, जूड़ा–सलाका, केशपाश आदि का प्रयोग अपने केश–विन्यास को सुगठित रखने के लिये तथा शिरोभूषण के रूप में भी करती थीं।

शिरोभूषण : रखड़ी शिरोभूषण : बोर

कर्णाभूषणः ओगन्या या पीपल–पत्र, भादरायण, बाली, चम्पाकली, कलास, अगोट्या, मोरनियां या मुरकियां, कान के ऊपरी भाग में वेढलौ, कान के मध्य भाग में बाली तथा कान के निचले भाग में प्रायः कर्णफूल, लूंग, तरकी, बूंदा, झुमका, फूल–झुमका, बजहटी, कर्ण लटकन, झूकर, मोर–भंवर, कुण्डल, मकर–कुण्डल, कुंटलिया, झेलौ, झाल, झाली, झडुआ, कोकरू, छेलकड़ी, लटंक खुंभी,

करडिम, कांचडियां, मणी, गुड़दौ, पत्तरी, मोती, मोती चोकड़ौ, टोटी, टोटी–सांकली, तुगलां, भेला, ठौरियौ, सुरलियौ, पत्तौ, पत्ती–सुरलियौ, बाटा, बूझली, झूटणौं, सुरगबाली, तड़कली, तड़कौ, डुरगलौ, धड़ी, धवी, पासौ आदि को तथा कान के सभी भागों में पाटन को धारण किया जाता था। 'बृहत् राजस्थानी–हिन्दी संस्कृति कोश'[9] के अनुसार ओगन्यौ एक कान में तीन–तीन पहने जाते थे, परन्तु 'आइने अकबरी'[10] में अबुल फजल ने इनकी संख्या आठ–नौ बतायी है।

नासिका–भूषणः भारतीय समाज में नासिका में आभूषण धारण करने की बहुत प्राचीन परम्परा नहीं है। इतिहासकारों के अनुसार भारत में नासिका–भूषण धारण करने का प्रचलन मुसलमानों के प्रभाव से प्रारम्भ हुआ। राजस्थानी साहित्य में नासिका–भूषण का सर्वप्रथम उल्लेख 'ढोला मारू रा दूहा'– ''नक–फूली लीधी नहीं, कहि सखि, कवण विचार''[11] तथा 'पृथ्वीराजरासो'– ''सु मुत्ति नास सोभई। दसन्न दुत्ति लोभई।।''[12] में मिलता है। राजस्थान में प्रचलित रहे नासिका–भूषण नक–फूली, लौंग, फूली, नथ, नथ–बीजली, बेसर अथवा नकबेसर, नकेसर, पांन, भंवरियौ, वाली, फीणी, खीवण, कांटा, वेण, भोगली, नासा–लटकन, बुलाक, चुनी, वारी, चोप आदि हैं। राजस्थानी लोकगीतों व कहावतों में भी नथ का उल्लेख हुआ है। कहावत ''नाक सूं नथड़ी भारी'' हैसियत से अधिक रईसी दिखाने वाले के लिए कही जाती है। लोकगीत के प्रस्तुत अंश में एक मारवाड़ी स्त्री अपने प्रियतम से 'नथ' व 'मोती' लाने के लिये उसे समंदर पार भी जाने को कह रही है–

''उत्तर जाइज्यौ दिक्खण जाइज्यौ जाइज्यौ समदां पार।
मारवणी रै नथ लाइज्यौ मोती लाइज्यौ चार।।''[13]

ग्रीवा के आभूषणः ग्रीवाभूषणों में सोने व चाँदी के पत्तरों पर बहुमूल्य मणियों, रत्नों तथा जवाहरातों को जड़कर बनाये गये हारों के आकार–प्रकार के अनुसार विभिन्न नाम रखे जाते थे, जैसे– चम्पाकली, उर्वशी, हंसहार, चन्द्रहार आदि। इनके अतिरिक्त सोने–चाँदी के ढले हुये मोतियों अथवा रत्नों को तराश कर बनाये गये मोतियों के हार 'मनकों का हार', प्राकृतिक मोतियों से बने 'मुक्ता–हार', मोती तथा मनकों की बनी लड़ियों की संख्या के आधार पर 'दो–लड़ी' से 'सात–लड़ी' तक के 'लड़ीदार हार' तथा विभिन्न प्रकार की मालायें– मोतियों से बनी 'मुक्ता–माला' व 'परूनिया', विभिन्न प्रकार के मनकों की बनी 'माणिक्य–माला' व 'मणि–माला' आज भी प्रचलित हैं। ग्रीवा के समीप 'हंसली' पर धारण किये जाने वाले आभूषण– हंसली अथवा हांसली, तांतणियौ, तोक, खंगवालौ, खूंगाली, टूपियौ आदि तथा कण्ठ पर धारण किये जाने वाले आभूषण– कण्ठी, कण्ठश्री, मोहनकण्ठी, तखतियां रौ कांठलौ, पोत, वाड़लौ, रूपक, निगोदर, पटियौ, पातौ, तील, टुस्सी, गलवटिया, गूजरी, छेड़ियौ, सरीसकंठ आदि प्रचलित रहे हैं। ग्रीवा के अन्य आभूषण– तिमणिया, टेवटा, हमेल, आड़, गुलबन्द, बेलोर, जुगनी, गलसर, गलपटियौ, गलप्रोत, गलसिरी, पाड़क, कठसरी, वेल, तगतगई, तेड़ियौ, दुगदुगी, पदम, लड़मूरत, सांकलौ, गोप, खींवली, ठुसी, डोरा आदि हैं। झालरो सोने या चाँदी का बना लड़ीदार हार होता था जिसमें घुँघरियां लटकी रहती थीं। इन आभूषणों में से मुख्यतः गुलबन्द, हमेल व तौकी को हिन्दू स्त्रियों के साथ–साथ मुस्लिम स्त्रियों द्वारा भी धारण करने का चलन रहा है। फूल, मांदलिया, पतड़ी या पतरी, बंजटी या बजट्टी, रामनामी आदि आभूषणों को बुरी नज़र से बचने के लिये धारण करने की परम्परा रही है। 'मंगल–सूत्र' स्त्रियों का प्रमुख सुहाग–सूचक आभूषण आज भी है।

हाथ के आभूषणः हाथ में आभूषण धारण करने की परम्परा राजस्थान में बहुत प्राचीन है। कालीबंगा से कलाई पर धारण की जाने वाली ताम्र की चूड़ियाँ तथा बहुमूल्य पत्थरों के मनके प्राप्त हुये हैं, जो राजस्थानी स्त्रियों में आभूषणों, विशेषकर चूड़ियों की लोकप्रियता को दर्शाते हैं। हाथों में धारण किये जाने वाले आभूषणों को बाहु, कलाई, हथेली व अंगुलियों के अन्तर्गत बाँटा जा सकता है –

- **बाहु के आभूषणः** राजस्थान में स्त्रियाँ अपने सुहाग की निशानी के रूप में कोहनी के ऊपर बाहु में हस्ति–दंत या लाख की चूड़ियों का 'गावदूम' समूह 'चूड़ा' पहनती हैं। इसमें चूड़ियाँ बाहु से कोहनी की तरफ क्रमशः छोटी होती जाती हैं। इसको 'चूड़ौ' या 'चूड़लौ' भी कहते हैं। चूड़ा राजस्थानी स्त्रियों की शृंगारिक परम्परा का विशेष आभूषण है, जो देश में अन्यत्र कहीं नहीं पहना जाता है। मूढ़या व खींच भी एक प्रकार के चूड़े होते हैं। बाहुबंद सोने अथवा चाँदी का बनता है, इसको रंग–बिरंगे फुन्दों व लटकनों से सज्जित कर स्त्रियाँ अपनी बाहुओं में बाँधकर पहनती हैं। इनके अतिरिक्त टड्डा, डंटकड़ौ, अणत, कड़ा, बहरखा, तकया, बाओटा, बाहु, चन्द्रवाह, आरत, अनंत, कालरियो आदि आभूषणों को स्त्रियों द्वारा बाहुओं में धारण करने की परम्परा रही है। 'बाजु–ताबीज' अनिष्टों से रक्षा हेतु धारण किया जाता है।
- **कलाई के आभूषणः** सम्पूर्ण भारत में स्त्रियाँ 'चूड़ी' धारण करती हैं, जो राजस्थान में भी अत्यन्त लोकप्रिय है। यह सुहागन स्त्री का प्रमुख आभूषण है। लाख की बनी 'तरंग', हस्ति–दंत की 'बिलिया', सोने की 'चमक–चूड़ी', बड़ी–बड़ी बिन्दियों वाली 'बैठक–चूड़ी', ताँबे के पत्तर से बनी 'पत्तरी', सोने–चाँदी के पत्तर चढ़ी 'बगड़ी', 'हिम–बालोई' आदि विभिन्न प्रकार की चूड़ियाँ कलाई में अकेले अथवा अन्य आभूषणों के साथ पहनी जाती हैं। सुहाग–सूचक 'मूठिया' कोहनी से कलाई तक धारण की जाने वाली विभिन्न प्रकार की चूड़ियों का 'गावदुम समूह' होता है। कलाई में विभिन्न प्रकार के 'कड़े' अथवा 'कड़ौ'– मोती कड़ौ, गोखरू, नौग्रही या नोगरी, गूंथवा कड़ा, हथफूल कड़ा आदि तथा विभिन्न प्रकार के 'कंकण' या 'कंगन'– कचबीड़ी, कांकणी या कोंकणी आदि धारण किये जाते हैं। स्त्रियाँ अपनी कलाई में पूंची, पहुंची या पूंचियौ तथा गजरा को बड़े चाव से धारण करती हैं, जिनका राजस्थानी लोकगीतों में काफी उल्लेख मिलता है–

  ''वीरा, म्हारै पूणचा नै चूड़लो लाज्यो, म्हारे गजरो बैठ धड़ाज्यो।''[14]

'क्रिसन–रुक्मणी–री वेलि' में रुक्मणी ने कलाइयों में गजरे, नव–रत्नों की बनी नव–ग्रही, पहुँचियां और फिर विविध प्रकार के कंगन पहने। कंगन आदि से घिरा हुआ हाथ ऐसा जान पड़ता था मानो चन्द्रमा को बेधे हुए हस्त नक्षत्र हो अथवा रंग–बिरंगे भौंरों से आच्छादित अधखिला कमल हो–

  ''गजरा नव–ग्रही प्रोंचिया प्रोंचइ, वले वलय विधि–विधि वलित हसत नखिल वेधियउ हिमकर, अरध कमल अलि–आवरित।''[15]

इन आभूषणों के अतिरिक्त स्त्रियों की कलाई के अन्य आभूषण डोडी, बहेल, लोरे बंगड़ी, धांणा–पुणछी, वलय, गूजरी अथवा गूजरनी, बन्द, गावची, अस्तूर, पाट, डाल, पाटला, पटौ, दस्तबंद, दुगड़ी, पछेली आदि रहे हैं। बंजारनों के चूड़े व मूठिया चाँदी से निर्मित 'गावदूम' आकार के क्रमशः बाहु से कोहनी तक तथा कोहनी से कलाई तक एक ही आभूषण होते हैं। पुराने समय में ऐसे चूड़े व मूठिये गाड़िया लोहारनों द्वारा भी धारण किये जाते थे।

- **अंगुलियों व हथेली के आभूषणः** अँगूठी, मुन्दड़ी, मुद्रिका, बींटी, दमणा, बिना नगीने की अँगूठी– गीजा, छाप, छल्ला, छलास आदि को अंगुलियों में तथा अँगुस्तान व आरसी को अंगूठे में धारण करने की परम्परा रही है। आरसी बहुमूल्य पत्थरों अथवा काँच जड़ी हुई प्रायः सोने की बनी होती थी। स्त्रियाँ इसको दर्पण के रूप में काम में लेती थीं। हथफूल, हथ–पान, खड़दावणा, सोवनफूल तथा सोवन–पांन आदि हथेली के पार्श्व भाग में पहने जाने वाले आभूषण रहे हैं।

कटि–आभूषणः कटि–प्रदेश में धारण किये जाने वाले आभूषणों का राजस्थानी साहित्य में प्रचुरता से उल्लेख है। कटि–आभूषण के लिये क्रिसन–रुक्मणी–री वेलि [16] व ढोला मारू रा दूहा [17] में 'कटि–मेखला', संदेशरासक [18] में किंकिणियों वाली 'रसणावलि', पृथ्वीराजरासो [19] में 'छुद्र–घंटिका', सुजान–चरित्र [20] में 'रसना' व 'छुद्रघंटिका', बाँकीदास–ग्रन्थावली [21] में 'रसणां' तथा मीरां बृहत्पदावली [22] में जोगन स्त्री के सन्दर्भ में 'मेखला' का उल्लेख मिलता है। राजस्थानी समाज में प्रचलित रहे अन्य कटि–आभूषण करधनी, तागड़ी, कन्दौरा, कणगती, सावली, झालरो आदि हैं। सटका घाघरे के नेफे में अटका कर लटकाया जाने वाला आभूषण रहा है, जिसमें स्त्रियाँ कुंजियाँ लगाती थीं।

कटि–आभूषण : कन्दौरा

पदाभूषणः पायल, पायजेब, नक्काशीदार नेवरी, कड़ा, कड़ौ, कड़लौ, भांक, हीरानामी, छड़ौ, छड़ा, कड़ी, कड़िया, टड्डा, तोड़ा या तोड़ौ, तोड़ासर, सांकलौ, साट, लछौ, जेहर या जेहरी, झांझर, जांझर, झांझ, तेघड़, टण्कौ, टोडरौ, तोडर, कालर, झ्यंकारतन, पोलरी, सिंजनी आदि स्त्रियों के पारम्परिक पदाभूषण हैं। पींजणी खोखले कड़े होते हैं, जिनके अन्दर धातु की कणिकायें भरी जाती हैं, जो चलने पर बजती हैं। झांझर, जांझर व झांझ भी चलने पर मधुर ध्वनि करने वाले आभूषण रहे हैं। पतली कड़ी 'छड़' प्रत्येक पाँव में एक साथ आठ–नौ पहनी जाती थीं। कुछ आभूषणों– 'कड़ा' व 'लंगर', 'आंवला' व 'सेवटा', 'कड़िया' व 'रमझोल' आदि को प्रायः जोड़े से दोनों पाँवों में पहना जाता था, जबकि 'बेड़ी–पागड़ौ' के जोड़े को केवल एक पाँव में धारण करने का चलन रहा है। 'मक्या' या 'मकियौ' पर अलंकरण–स्वरूप बने दाने मक्के के दानों सदृश दिखते थे। लोक–नृतकों का पदाभूषण घुँघरू लगा हुआ पट्टा भी 'रमझोल' कहलाता है, जिसे नर्तकों द्वारा पाँवों में शृंगार–स्वरूप तथा नृत्य की लय व ताल पर मधुर ध्वनि उत्पन्न करने के लिये बाँधने की परम्परा है।

पदाभूषण : कड़िया, रमझोल, पायल व अंगुतळा

पाँव की अंगुलियों में धारण किये जाने वाले आभूषणों में 'बिछिया' स्त्रियों के सुहागन होने की निशानी माना जाता है। राजस्थान में पाँव के अंगूठों में अंगूठौ, अंगुतळा, चटकन, अणवट आदि आभूषण धारण करने की परम्परा रही है। पाँव की अंगुलियों व अंगूठे में धारण किये जाने वाले अन्य आभूषण अनौटा, गोल्या, फोलरी, फुलड़ी, बिच्छुड़ी, छल्ला, नखलियौ आदि रहे हैं। 'पगपांन' हस्ताभूषण 'हथफूल' की तरह होता था, जिसे विवाह अथवा विशेष उत्सवों में धारण किया जाता था।

देह के विभिन्न अंगों पर धारण किये जाने वाले इन आभूषणों के अतिरिक्त स्त्रियाँ अपने ललाट को सोने–चाँदी, हीरे–मोती आदि की बनी बिन्दी से सुशोभित करती थीं– ''बिंदली मोत्यां वारी''[23], ''तिय–मुख लखि हीरा–जरी बेंदी बढ़े बिनोद।''[24] आज बाजार में विभिन्न पदार्थों, आकृतियों व रंगों की बिन्दियाँ उपलब्ध हैं। बिन्दी लगाना स्त्री के सौभाग्यवती होने का सूचक माना जाता है। धनुषाकार भ्रुवों पर 'सोहली' नामक आभूषण पहना जाता था। 'ढोला मारू रा दूहा' में नायिका की भ्रुवों पर सुशोभित सोहली को आकाश में उड़ती पतंग की उपमा दी गयी है–

> ''भुमहाँ ऊपरि सोहलो परिठिउ जाँणि क चंग। ढोला, एही मारूवी नव नेही, नव रंग।।''[25]

पुरुष–आभूषण

राजस्थान के पुरुषों में भी आभूषण धारण करने की गहन अभिरुचि रही है। 'सुजान–चरित्र' में विभिन्न प्रकार के पुरुषाभूषणों का उल्लेख किया गया है–

> ''कलगी तुर्रा झौर जग सिरपेज सु कुडल। मोती गुर्दा और गोखरू रूद्रराक्ष भल।।''[26]

अन्य विभिन्न साहित्यिक कृतियों के अध्ययन से प्राप्त पुरुष–आभूषण इस प्रकार हैं–

शिरोभूषणः मुकुट व ताज पुरुषों के मुख्य शिरोभूषण रहे हैं, जो शासक वर्ग के आभूषण थे। कालक्रम में इन आभूषणों का स्थान पाग, पगड़ी, साफा आदि शिरोवस्त्रों ने ले लिया। आभूषणप्रियता एवं सौन्दर्य की दृष्टि से इन शिरोवस्त्रों पर लगाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के आभूषण इस प्रकार हैं– रतनपेच, सिरपेच, फतह चांद अथवा फतैचांद, सेली, सरपोश, छल्ला, माजा, कलंगी, बंकबत्ती, तुर्रा, छौगो आदि। वर्तमान में 'सिरपेच' अथवा 'कलंगी' को विवाह के समय वर अपने साफे या पगड़ी पर धारण करता है।

कर्णाभूषणः लूंग अथवा लौंग, कुण्डल, बाली, मुरकी, मांमा मुरकी, गोखरू, गोखरू–झेला, बाली, मोती–चौकड़ा, सरगासेली, बीरबली, ठोरियौ, मुद्रा आदि कर्णाभूषण पुरुषों द्वारा धारण किये जाते रहे हैं।

ग्रीवाभूषणः हार, गलसर, हंसली, हांसला, कंठी, प्याड, धुगधुगी, बलेवड़ा, फूल, डोरौ, मांदलिया आदि आभूषण पुरुषों द्वारा अपनी ग्रीवा में धारण करने की परम्परा रही है।

ग्रीवाभूषण : हांसला व फूल

हाथ के आभूषणः बाजूबंद, भुजबंद, डोडी, डंटकड़ौ, टड्डा, हथ्थ–संकर, कड़ा, माठी, अंगूठी अथवा मुद्रिका, वींटी, छाप आदि पुरुषों के हाथ के आभूषण रहे हैं। युद्ध के समय यौद्धा 'रणकंकण' को विशेष रूप से अपनी कलाई पर धारण करते थे।

कटि–आभूषणः छुद्र–घंटिका, करधनी, मेखला, कमर–पट्टा, कमर–साल अथवा कुरासन का पट्टा, चौथ, जार कमर, काछनी आदि पुरुषों के कटि–आभूषण रहे हैं।

पदाभूषणः कड़ा, छेलकड़ा, बेड़ी, टोडर, तांती, सड़पी अथवा सुरपी आदि पुरुषों के पदाभूषण रहे हैं। 'तांती' को केवल एक पाँव में पहना जाता था। कड़ा व टोडर प्रायः स्वर्णाभूषण होते थे, जिन्हें मुख्य रूप से राजपरिवार के सदस्य ही धारण करते थे। अन्य लोगों को इनको पहनने का अधिकार राजा द्वारा प्रदान किया जाता था, जो उनकी प्रतिष्ठा का सूचक होता था।

पदाभूषण : बेड़ी व तांती

राजस्थान में स्त्री एवं पुरुषों द्वारा दाँतों को सोने से 'मढ़वाने' तथा इनमें 'राखन', 'धांस', 'मासा', 'चूंप' आदि सोने के आभूषण जड़वाने की परम्परा रही है। यज्ञोपवीत संस्कार में शासक व समृद्धजन सोने का बना 'जनेऊ'[27] धारण करते थे। शासक तथा समृद्ध वर्ग के पुरुषों का तिलक करने के पश्चात् 'अक्षत' के स्थान पर 'मोतियों'

का उपयोग किया जाता था, जो 'मोती–अक्षत'[28] कहलाते थे। पुरुष अपने परिधानों पर दोनों कंधों से लटकता हुआ आभूषण 'सेलिया' लगाते थे तथा विभिन्न प्रकार से अलंकृत 'बटनों' का प्रयोग करते थे। राजस्थानी पुरुषों का एक बहुत बड़ा वर्ग युद्धों में रत रहता था, अतः कुछ विशेष अस्त्र वे सदैव अपने कटि–प्रदेश में सुरुचिपूर्वक बाँधकर रखते थे। इन अस्त्रों के अलंकृत आवरण तथा मूठ पुरुषों के व्यक्तित्व की शोभा बढ़ाते थे– ''स्त्रीहथां खाग खंजर सहित, सुजड़ बंधाए स्त्रीहथां''[29] तथा ''कसि जड़ित जवाहर खग कटार, तुररास जवाहर रूप तार।''[30] अतः इन अस्त्रों को यदि आभूषण कहा जाये तो तलवार, कटारें आदि भी पुरुषों के आभूषण थे।

मध्यकाल के राजस्थान में स्वर्णाभूषण केवल राजपरिवार, सामन्त, जागीरदार व राज्य द्वारा स्वीकृत जाति के लोग ही धारण करते थे, अन्य लोगों द्वारा सोने के आभूषण धारण करने पर प्रतिबंध था।[31] अतः अन्य वर्ग के लोगों में प्रायः चाँदी, पीतल, कांसे आदि के आभूषण धारण करने की परम्परा थी। राजस्थानी स्त्रियों में लाख, हस्तिदंत व काँच के बने आभूषण भी अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं।

पुष्पाभरण

राजस्थानी साहित्य में पुष्पाभरणों का भी प्रचुरता से उल्लेख है, जो स्थानीय समाज में श्रृंगार की दृष्टि से अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। सहज–सुलभ नयनाभिराम पुष्प सुगंध व ताजगी प्रदान करते हैं, अतः स्त्रियाँ इनके गहने बना लिया करती थीं– ''रुचि कुसुम अंग गहने बनाइ''[32] एवं उनसे अपने अंगों का श्रृंगार करती थीं– ''बरं अंग अंग रची फूलमाला।''[33] स्त्रियाँ अपने केश–विन्यासों को भी पुष्पों तथा पुष्पाभरणों से सज्जित करती थीं–

''सित कुसुमाँ गूँथी सुखद, वेणी सहियाँ ब्रंद।''[34]
''गूँथे बाल लाडु पर फूलन की माल फळै''[35]

स्त्रियाँ अपने ललाट पर बिन्दी के रूप में पुष्पों की पंखुड़ियाँ [36] लगाती थीं, नासिका [37] व कानों [38] को पुष्पों से सुशोभित करती थीं तथा अपने वक्षस्थल व ग्रीवा के श्रृंगार के लिये पुष्पों के हार गूँथती थीं– ''औ सिंगार हार जनु गूंदहिं।'' [39]। पुरुष प्रायः पुष्पों के हार और मोड अथवा सेहरा ही धारण करते थे, जो विवाहोत्सव में वर के चेहरे को ढँकनेवाला लड़दार पुष्पाभरण होता था– ''सोभत फूलन को सिर संदुरा मंगल गीत गुनी मिली गाव।''[40] जोधपुर के महाराज अभयसिंह ने अपने राजतिलक के अवसर पर 'चौसरा' फूलों का हार पहना हुआ था।[41] पुष्पों का हार 'जयमाला' युद्ध में विजयी पुरुष अथवा स्वयंवर में वधू द्वारा वर को पहनाया जाता था। इन पुष्पाभरणों के अतिरिक्त विवाह के अवसर पर वधू को पहनाये जाने वाले सोने–चाँदी के वरक से मंडित मेवों के हार– 'जवाली', साधक एवं संन्यासी जनों द्वारा धारण किये जाने वाली तुलसी के मनकों की छोटी माला– 'कण्ठी' व दो–लड़ा हार– 'तुलसी', 'रुद्राक्ष' की माला, पीले बाँस की लड़ियों वाली कण्ठी– 'झंझीरौ', 'गुणावल' आदि का भी राजस्थानी समाज में विशेष स्थान रहा है। साधक व संन्यासी अपने कटि–प्रदेश में मूंज की बनी मेखला तथा एक धर्म विशेष में निष्ठा रखने वाले लोग सूत का बना जनेऊ धारण करते थे। वर्तमान में पुष्पाभरणों को मुख्यतः मांगलिक एवं धार्मिक उत्सवों के समय ही धारण करने की परम्परा रह गयी है।

निष्कर्ष

राजस्थान से सम्बंधित विभिन्न साहित्यिक व ऐतिहासिक रचनाओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यहाँ की श्रृंगारिक परम्परा को समय–समय पर विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक घटकों ने प्रभावित किया है। इन घटकों से प्रभावित रहने के बाद भी यहाँ के पूर्ववर्ती शासक अपनी परम्पराओं का सम्मान करते थे। 'यथा राजा तथा प्रजा' उक्ति को चरितार्थ करते हुये यहाँ का साधारण जन–समुदाय भी अपनी परम्पराओं से जुड़ा हुआ रहा है। यहाँ के लेखकों ने अपनी लेखनी से इन परम्पराओं को अपने वर्तमान के साथ–साथ भविष्य के लिये भी संजोकर रखा है। परिवर्तन अवश्यंभावी है, जो मानव को विकास की ओर ले जाने के साथ–साथ उसे समय के साथ चलना सिखाता है। राजस्थान में श्रृंगारिक परम्परा की 'देहधार्य' कला के अन्तर्गत आभूषणों के स्वरूप में हुये परिवर्तनों को स्वीकार करते हुये राजस्थानी समाज इन आभूषणों के प्राचीन स्वरूप को भी अपनाये हुये है। अपने दैनिक जीवन विशेषकर विभिन्न तीज–त्योहारों व उत्सवों के अवसरों पर परंपरागत आभूषणों से अलंकृत राजस्थानी स्त्री एवं पुरुषों की छटा अत्यंत दर्शनीय होती है। यहाँ के रीति–रिवाजों, तीज–त्योहारों, उत्सवों आदि ने प्राचीन श्रृंगारिक परम्परा को यथासम्भव जीवित रखने के साथ–साथ इसको समृद्ध व कलात्मक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. करणीदान, सूरजप्रकास, सम्पादक–सीताराम लालस, प्रथमावृत्ति, द्वितीय भाग, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1962, छंद 66, पृ. 143
2. वही, छंद 102, पृ. 150
3. आभूषण बत्तीसी, हस्तलिखित ग्रन्थ, ग्रन्थांक 8143 (14), राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
4. जवाहर खाना री बही, नं. 400 (ह. ग्रं.), महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर
5. कल्लोल, ढोला मारू रा दूहा, सम्पादक– रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, चतुर्थ संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2020
6. वही, दूहा 481, पृ. 157
7. सूदन, सुजान–चरित्र, सम्पादक– राधाकृष्णदास, द्वितीय संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1923, कविता 41–42, पृ. 174–175
8. चंद बरदाई, पृथ्वीराजरासो, सम्पादक– मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुन्दरदास, खण्ड 2, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, 1906, छंद 161, पृ. 565,
9. सम्पादक– सद्दीक मोहम्मद, बृहत् राजस्थानी–हिन्दी संस्कृति कोश, प्रथम संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2017, पृ. 35
10. अबुल फजल, आइने अकबरी, अनुवादक– एच. एस. जरैट, तृतीय भाग, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1894, पृ. 313
11. कल्लोल, ढोला मारू रा दूहा, सम्पादक– रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, चतुर्थ संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2020, दूहा 571, पृ. 172
12. चंद बरदाई, पृथ्वीराजरासो, सम्पादक– मोहनलाल विष्णुलाल पंडया, श्यामसुन्दरदास, खण्ड 3, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1907, छंद 59, पृ. 1026
13. सम्पादक– सद्दीक मोहम्मद, बृहत् राजस्थानी–हिन्दी संस्कृति कोश, प्रथम संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2017, पृ. 205
14. विक्रमसिंह राठौड़, राजस्थान की संस्कृति में नारी, प्रथम संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2020, पृ. 51
15. पृथ्वीराज राठौड़, क्रिसन–रुक्मणी–री वेलि, सम्पादक– नरोत्तमदास स्वामी, द्वितीय संस्करण, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा, 1965, छंद 93, पृ. 48
16. वही, छन्द 96, पृ. 49
17. कल्लोल, ढोला मारू रा दूहा, सम्पादक– रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, चतुर्थ संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2020, दूहा 481, पृ. 157.

18. अब्दुल रहमान, सन्देश रासक, सम्पादक– हजारीप्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रथमावृत्ति, यशोधर मोदी–हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई, 1960, छंद 26, पृ. 9
19. चंद बरदाई, पृथ्वीराजरासो, सम्पादक– मोहनलाल विष्णुलाल पंडया, श्यामसुन्दरदास, खण्ड 3, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1907, छन्द 61, पृ. 1026
20. सूदन, सुजान–चरित्र, सम्पादक– राधाकृष्ण दास, द्वितीय संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1923, कविता 41, पृ. 175
21. बाँकीदास आसिया, बाँकीदास–ग्रन्थावली, सम्पादक– मुरारिदान अयाचक, महताबचन्द्र खारैड़, प्रथम संस्करण, तीसरा भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1938, छन्द 9, पृ. 34
22. मीरांबाई, मीरां बृहत्पदावली, सम्पादक– फतहसिंह, प्रथम भाग, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1968, पद 171/1, पृ. 83
23. वही, पद 393, पंक्ति 2, पृ. 85
24. बिहारीलाल, बिहारी–रत्नाकर, टीकाकार– बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर', प्रथम संस्करण, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1926, दोहा 707, पृ. 292
25. कल्लोल, ढोला मारू रा दूहा, सम्पादक– रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, चतुर्थ संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2020, दूहा 465, पृ. 155
26. सूदन, सुजान–चरित्र, सम्पादक– राधाकृष्णदास, द्वितीय संस्करण, प्रथम भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1923, पृ. 175
27. चंद बरदाई, पृथ्वीराजरासो, सम्पादक– मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुन्दरदास, खण्ड 2, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, 1906, छंद 24, पृ. 547
28. करणीदान, सूरजप्रकास, सम्पादक– सीताराम लालस, द्वितीय भाग, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1962, कवित्त 1, पृ. 129 व छन्द 8, पृ. 131
29. वही, कवित्त 1, पृ. 129
30. वही, छन्द 4, पृ. 130
31. विक्रमसिंह राठौड़, मारवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, प्रथम संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1999, पृ. 68
32. चंद बरदाई, पृथ्वीराजरासो, सम्पादक– मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुन्दरदास, खण्ड 3, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1907, छंद 129, पृ. 1290
33. जोधराज, हम्मीररासो, संकलनकर्ता– श्यामसुंदर दास, तृतीय संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1948, छंद 114, पृ. 20–21
34. बाँकीदास आसिया, बाँकीदास–ग्रन्थावली, सम्पादक– मुरारिदान अयाचक, महताबचन्द्र खारैड़, प्रथम संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1938, छंद 3, पृ. 31
35. वृन्द, वृन्द ग्रन्थावली, सम्पादक– जनार्दन राव चेलेर, प्रथम संस्करण, तीसरा भाग, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1971, दोहा 12, पृ. 28
36. बिहारीलाल, बिहारी–रत्नाकर, टीकाकार– बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर', प्रथम संस्करण, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1926, दोहा 248, पृ. 103
37. मलिक मुहम्मद जायसी, पदमावत, व्याख्याकार– वासुदेवशरण अग्रवाल, द्वितीय संस्करण, साहित्य सदन, झाँसी, 1961, दोहा 475, पृ. 600
38. माघ, शिशुपालवध, व्याख्याकार– वल्लभदेव व मल्लिनाथ, सम्पादक– अनन्तराम शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस सिटी, 1929, छंद 59–60, सर्ग 7, पृ. 272
39. मलिक मुहम्मद जायसी, पदमावत, व्याख्याकार– वासुदेवशरण अग्रवाल, द्वितीय संस्करण, साहित्य सदन, झाँसी, 1961, दोहा 433, पंक्ति 4, पृ. 534
40. वृन्द, वृन्द ग्रन्थावली, सम्पादक– जनार्दन राव चेलेर, प्रथम संस्करण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1971, सवैया 30, पृ. 39
41. करणीदान, सूरजप्रकास, सम्पादक– सीताराम लालस, द्वितीय भाग, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1962, छंद 7, पृ. 130